लक्ष्मी नारायण दुबे महाविद्यालय,

मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण

# प्रेमचन्द की कहानी 'बूढ़ी काकी' ( मूल पाठ )

डॉ. सन्तोष विश्नोई, सहायक प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग

# 'बूढ़ी काकी'

बुढ़ापा अक्सर बचपन का दौर-ए-सानी हुआ करता है। बूढ़ी काकी में ज़ायक़ा के सिवा कोई हिस बाक़ी न थी और न अपनी शिकायतों की तरफ़ मुख़ातिब करने का, रोने के सिवा कोई दूसरा ज़रिया आँखें हाथ, पैर सब जवाब दे चुके थे। ज़मीन पर पड़ी रहतीं और जब घर वाले कोई बात उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ करते, खाने का वक़्त टल जाता या मिक़दार काफ़ी न होती या बाज़ार से कोई चीज़ आती और उन्हें न मिलती तो रोने लगती थीं और उनका रोना महज़ बिसूरना न था। वो ब-आवाज़ बुलंद रोती थीं। उनके शौहर को मरे हुए एक ज़माना गुज़र गया। सात बेटे जवान हो हो कर दाग़ दे गए और अब एक भतीजे के सिवा दुनिया में उनका और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने सारी जायदाद लिख दी थी। उन हज़रात ने लिखाते वक़्त तो ख़ूब लंबे चौड़े वादे किए लेकिन वो वादे सिर्फ़ कलबी डिपो के दलालों के सब्ज़-बाग़ थे। अगरचे उस जायदाद की सालाना आमदनी डेढ़ दो सौ रुपये से कम न थी लेकिन बूढ़ी काकी को अब पेट भर रूखा दाना भी मुश्किल से मिलता था। बुध राम तबीयत के नेक आदमी थे लेकिन उसी वक़्त तक कि उनकी जेब पर कोई आँच न आए, रूपा तबीयत की तेज़ थी लेकिन ईश्वर से डरती थी, इसलिए बूढ़ी काकी पर उसकी तेज़ी इतनी न खुलती थी जितनी बुध राम की नेकी।

बुध राम को कभी कभी अपनी बे-इंसाफ़ी का एहसास होता। वो सोचते कि इस जायदाद की बदौलत में इस वक़्त भला आदमी बना बैठा हूँ और अगर ज़बान तस्कीन या तशफ्फी से सूरत-ए-हाल में कुछ इस्लाह हो सकती तो उन्हें मुतलक़ दरेग़ न होता लेकिन मज़ीद ख़र्च का ख़ौफ़ उनकी नेकी को दबाए रखता था। उसके बरअक्स अगर दरवाज़े पर कोई भलामानस बैठा होता और बूढ़ी काकी अपना नग़मा-ए-बे-हंगाम शुरू कर देतीं तो वो आग हो जाते थे और घर में आकर उन्हें ज़ोर से डाँटते थे। लड़के जिन्हें बुड्ढों से एक बुग़्ज़ अल्लाह होता है, वालदैन का ये रंग देखकर बूढ़ी काकी को और भी दिक़ करते। कोई चुटकी लेकर भागता, कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता। काकी चीख़ मार कर रोतीं। लेकिन ये तो मशहूर ही था कि वो सिर्फ़ खाने के लिए रोती हैं। इसलिए कोई उनके नाला-ओ-फ़र्याद पर ध्यान न देता था। वहां अगर काकी कभी ग़ुस्से में आकर लड़कों को गालियां देने लगतीं तो रूपा मौक़ा-ए-वारदात पर ज़रूर जाती। इस ख़ौफ़ से काकी अपनी शमशीर ज़बानी का शाज़ ही कभी इस्तेमाल करती थीं। हालाँकि रफ़ा शर की ये तदबीर रोने से ज़्यादा कारगर थी।

सारे घर में अगर किसी को काकी से मुहब्बत थी तो वो बुध राम की छोटी लड़की लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयों के ख़ौफ़ से अपने हिस्से की मिठाई या चबेना बूढ़ी काकी के पास बैठ कर खाया करती थी यही उसका मलजा था और अगरचे काकी की पनाह उनकी मुआनिदाना सरगर्मी के बाइस बहुत गिरां पड़ती थी लेकिन भाइयों के दस्त-ए-ततावुल से बदर जहाँ क़ाबिल-ए-तर्जीह थी इस मुनासिब अग़राज़ ने इन दोनों में मुहब्बत और हमदर्दी पैदा कर दी थी।

रात का वक़्त था। बुध राम के दरवाज़े पर शहनाई बज रही थी और गांव के बच्चों का जम-ए-ग़फ़ीर निगाह हैरत से गाने की दाद दे रहा था, चारपाइयों पर मेहमान लेटे हुए नाइयों से टिकियां लगवा रहे थे, क़रीब ही एक भाट खड़ा कबित सुना रहा था और बा'ज़ सुख़न-फ़हम मेहमान की वाह वाह से ऐसा ख़ुश होता था गोया वही इस दाद का मुस्तहक़ है दो एक अंग्रेज़ी पढ़े हुए नौजवान उन बेहूदगियों से बेज़ार थे। वो इस दहक़ानी मजलिस में बोलना या शरीक होना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते। आज बुध राम के बड़े लड़के सुख राम का तिलक आया है। ये उसी का जश्न है, घर में मस्तूरात गा रही थीं और रूपा मेहमानों की दावत का सामान करने में मसरूफ़ थी, भट्टियों पर कड़ाह चढ़े हुए थे। एक में पूरियां-कचौरियां निकल रही थीं दूसरे में समोसे और पीड़ा केन बनती थीं। एक बड़े हण्डे में मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसालहे की इश्तिहा अंगेज़ ख़ुशबू चारों तरफ़ फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी अँधेरी कोठरी में ख़याल-ए-ग़म की तरह बैठी हुई थीं। ये लज़्ज़त आमेज़ ख़ुश्बू उन्हें बे-ताब कर रही थी। वो दिल में सोचती थीं। शायद मुझे पूरियां न मिलेंगी। इतनी देर हो गई कोई खाना लेकर नहीं आया मालूम होता है लोग सब खा गए हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। ये सोच कर उन्हें बे-इख़्तियार रोना आया। लेकिन शगुन के ख़ौफ़ से रो न सकें।

आहा, कैसी ख़ुश्बू है। अब मुझे कौन पूछता है। जब रोटियों ही के लाले हैं तो ऐसे नसीब कहाँ कि पूरियां पेट भर मिलें। ये सोच कर उन्हें फिर बे-इख़्तियार रोना आया कलेजे में एक हूक सी उठने लगी लेकिन रूपा के ख़ौफ़ से उन्होंने फिर ज़ब्त किया।

बूढ़ी काकी देर तक इन्ही अफ़सोसनाक ख़यालों में डूबी रहीं। घी और मसालहे की ख़ुश्बू रह-रह कर दिल को आपे से बाहर किए देती थी। मुँह में पानी भर भर आता था। पूरियों का ज़ायक़ा याद करके दिल में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ। आज लाडली भी नहीं आई, दोनों लौंडे रोज़ दिक़ किया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकी की चश्म-ए-ख़याल में पूरियों की तस्वीर नाचने लगी। ख़ूब लाल लाल फूली फूली नर्म नर्म होंगी। एक पूरी मिलती तो ज़रा हाथ में लेकर देखती क्यों न चल कर कड़ाह के सामने ही बैठूँ।

पूरियां छन छन कर के कड़ाह में तैरती होंगी। कड़ाह से गर्मा गर्म निकल कर कठोते में रखी जाती होंगी। फूल हम घर में भी सूंघ सकते हैं लेकिन सैर-ए-बाग़ का कुछ और ही लुत्फ़ है।

इस तरह फ़ैसला करके बूढ़ी काकी उकड़ूं बैठ कर हाथों के बल खिसकती हुई बमुश्किल तमाम चौखट से उतरीं और धीरे धीरे रेंगती हुई कढ़ाओं के पास जा बैठी। रूपा उस वक़्त एक सरासीमगी की हालत में कभी इस कमरे में जाती । कभी उस कमरे में। कभी कड़ाह के पास, कभी कोठे पर। किसी ने बाहर से आकर कहा महराज ठंडाई मांग रहे हैं। ठंडाई देने लगी।

इतने में फिर किसी ने आकर कहा, भाट आया है। उसे कुछ दे दो। भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा कि अभी खाना तैयार होने में कितनी देर है? ज़रा ढोल मजीरा उतार दो। बेचारी अकेली औरत चारों तरफ़ दौड़ते दौड़ते हैरान हो रही थी। झुँझलाती थी, कुढ़ती थी। पर गुस्सा बाहर निकलने का मौक़ा न पाया था। ख़ौफ़ होता था। कहीं पड़ोसनें ये न कहने लगें कि इतने ही में उबल पड़ीं। प्यास से ख़ुद उसका हलक़ सूखा जाता था। गर्मी के मारे फुंकी जाती थी लेकिन इतनी फ़ुर्सत कहाँ कि ज़रा पानी पी ले या पंखा लेकर झले। ये भी अंदेशा था कि ज़रा निगाह पलटी और चीज़ों की लूट मची। इस कश्मकश के आलम में, उसने बूढ़ी काकी को कड़ाह के पास बैठे देखा तो जल गई। गुस्सा न रुक सका ये ख़याल न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं। दिल में क्या कहेंगी। मर्दाने में लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे जैसे मेंढ़क केचुवे पर झपटता है उसी तरह वो बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झँझोड़कर बोली, ऐसे पेट में आग लगे। पेट है कि आग का कुंड है। कोठरी में बैठते क्या दम घुटता था। अभी मेहमानों ने नहीं खाया। देवताओं का भोग तक नहीं लगा। तब तक सब्र न हो सका। आकर छाती पर सवार हो गई। नोच ऐसी जीभ दिन-भर खाती न रहतीं तो न जाने किसकी हांडी में मुँह डालतीं। गांव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भर पेट खाने को नहीं पाती। तब ही तो इस तरह बौखलाए फिरती है। इस ख़याल से उसका ग़ुस्सा और भी तेज़ हो गया। डायन मरे न माँझा छोड़े। नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवा के दम लेगी। इतना ठूँसती है। जाने कहाँ भस्म हो जाता है। ले भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो। जब घर के लोग लगें तो तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी तक न जाये लेकिन पहले तुम्हारी पूजा कर दे।

बूढ़ी काकी ने सर न उठाया। न रोईं न बोलीं, चुप-चाप रेंगती हुई वहां से अपने कमरे में चली गईं। सदमा ऐसा सख़्त था कि दिलो दिमाग की सारी क़ुव्वतें सारे जज़्बात सारी हिसियात इस तरफ़ रुजू हो गई थीं। जैसे नदी में जब कराड़ का कोई बड़ा टुकड़ा कट कर गिरता है तो आस-पास का पानी चारों तरफ़ से सिमट कर उस ख़ला को पूरा करने के लिए दौड़ता है।

खाना तैयार हो गया। आँगन में पत्तल पड़ गए। मेहमान खाने लगे । औरतों ने ज्योनार गाना शुरू किया। मेहमानों के नाई और ख़िदमतगार भी इस जमात के साथ पर ज़रा हट कर खाने बैठे हुए थे लेकिन आदाब-ए-मजलिस के

मुताबिक़ जब तक सब के सब खा ना चुकें कोई उठ न सकता था। दो एक मेहमान जो ज़रा तालीम याफ्ता थे ख़िदमतगारों की पर ख़ोरी पर झुँझला रहे थे। वो इस क़ैद को बेमानी व मोह्मल समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में जाकर पछता रही थीं कि कहाँ से कहाँ गई। उन्हें रूपा पर ग़ुस्सा नहीं था। अपनी उजलत पर अफ़सोस था। सच तो है जब तक मेहमान खा न चुकेंगे, घर वाले कैसे खाएँगे, मुझसे इतनी देर भी न रहा गया। सब के सामने पानी उतर गया। अब जब तक कि कोई न बुलाने आएगा न जाऊंगी।

दिल में ये फ़ैसला करके वो ख़ामोशी से बुलावे का इंतिज़ार करने लगीं लेकिन घी की मर्ग़ूब ख़ुश्बू बहुत सब्र आज़मा साबित हो रही थी। उन्हें एक एक लम्हा एक एक घंटा मालूम होता था अब पत्तल बिछ गए होंगे। अब मेहमान आ गए होंगे। लोग हाथ पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने पर बैठ गए। ज्योनार गाया जा रहा है। ये सोच कर बहाने के लिए लेट गईं और धीरे धीरे गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते बहुत देर हो गई। क्या इतनी देर तक लोग ख़ा ही रहे होंगे। किसी की बोल-चाल सुनाई नहीं देती। ज़रूर लोग खा पी के चले गए, मुझे कोई बुलाने नहीं आया। रूपा चिड़ गई है क्या जाने कि न बुलाए। सोचती हो कि आप ही आयेंगी। कोई मेहमान नहीं कि बुला कर लाऊँ।

बूढ़ी काकी चलने के लिए तैयार हुईं। ये यक़ीन कि अब एक लम्हे में पूरियां और मसालेदार तरकारियां सामने आयेंगी और उनके हुस्न-ए-ज़ायक़ा को गुदगुदाने लगा। उन्होंने दिल में तरह तरह के मंसूबे बाँधे। पहले तरकारी से पूरियां खाऊँगी फिर दही और शक्कर से। कचौरियां रायते के साथ मज़ेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने या भला मैं तो मांग मांग कर खाऊंगी। यही न लोग कहेंगे इन्हें लिहाज़ नहीं है कहा करें। इतने दिनों के बाद पूरियां मिल रही हैं तो मुँह झूटा करके थोड़े ही उठ आऊँगी।

वो उकड़ूं बैठ कर हाथों के बल खिसकती हुई आँगन में आईं। मगर वाय क़िस्मत इश्तियाक़ ने अपनी पुरानी आदत के मुताबिक़ वक़्त का ग़लत अंदाज़ा किया था, मेहमानों की जमात अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उंगलियां चाटता था और कनखियों से देखता था कि और लोग भी खा रहे या नहीं। कोई इस फ़िक्र में था कि तेल पर पूरियां छूटी जाती हैं। काश किसी तरह उन्हें अंदर रख लेता। कोई दही खाकर ज़बान चटख़ारता था लेकिन दूसरा शकूर अलिफ़ मांगते हुए शरमाता था कि इतने में बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में जा पहुंचीं, कई आदमी चौंक कर उठ खड़े हुए, आवाज़ें आईं, अरे ये कौन बुढ़िया है? देखो किसी को छू मत ले।

पण्डित बुध राम काकी को देखते ही ग़ुस्से से तिलमिला गए। पूरियों के थाल लिए खड़े थे थाल को ज़मीन पर पटक दिया और जिस तरह बेरहम साहूकार अपने किसी नादिहंद मग़रूर असामी को देखते ही झपट कर उसका टेटुआ लेता है उसी तरह लपक कर उन्होंने बूढ़ी काकी के दोनों शाने पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें उस अँधेरी कोठरी में धम से गिरा दिया। आरज़ुओं का सब्ज़-बाग़ लू के एक झोंके में वीरान हो गया।

मेहमानों ने खाना खाया। घरवालों ने खाया। बाजे वाले, धोबी, चमार भी खा चुके लेकिन बूढ़ी काकी को किसी ने न पूछा। बुध राम व रूपा दोनों ही उन्हें उनकी बे-हयाई की सज़ा देने का तस्फ़िया कर चुके थे। उनके बुढ़ापे पर, बेकसी पर, फुतूरे अक़्ल पर किसी को तरस नहीं आता था। अकेली लाडली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाडली को काकी से बहुत उन्स था। बेचारी भोली, सीधी लड़की थी। तिफ़लाना शोख़ी और शरारत की उसमें बू तक न थी। दोनों बार जब उसकी माँ और बाप ने काकी को बेरहमी से घसीटा तो लाडली का कलेजा बैठ कर रह गया। वो झुँझला रही थी कि ये लोग काकी को क्यों बहुत सी पूरियां नहीं दे देते। क्या मेहमान सबकी सब थोड़े ही खा जाएंगे और अगर काकी ने मेहमानों से पहले ही खा लिया तो क्या बिगड़ जाएगा? वो काकी के पास जाकर उन्हें तसल्ली देना चाहती थी। लेकिन माँ के ख़ौफ़ से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूरियां मुतलक़ न खाई थीं। अपनी गुड़ियों की पिटारी में बंद कर रखी थीं। वो ये पूरियां काकी के पास ले जाना चाहती थीं। उसका दिल बेक़रार हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी आवाज़ सुनते ही उठ बैठेंगी। पूरियां देखकर कैसी ख़ुश होंगी। मुझे ख़ूब प्यार करेंगी।

रात के ग्यारह बज चुके थे। रूपा आँगन पड़ी सो रही थी। लाडली की आँखों में नींद न आती थी। काकी को पूरियां खिलाने की ख़ुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियों की पिटारी सामने ही रखी। जब उसे यक़ीन हो गया कि अम्मां ग़ाफ़िल सो रही हैं तो वो चुपके से उठी और सोचने लगी कि कैसे चलूं। चारों तरफ़ अंधेरा था। सिर्फ़ चूल्हों में आग चमक रही थी और चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडली की निगाह दरवाज़ा वाले नीम के दरख़्त की तरफ़ गई। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुए हैं। उनकी दुम उनकी गदा सब साफ़ नज़र आती थी। मारे ख़ौफ़ के उसने आँखें बंद करलीं। इतने में कुत्ता उठ बैठा, लाडली को ढारस हुई। कई सोते हुए आदमियों की बनिस्बत एक जागता हुआ कुत्ता उसके लिए ज़्यादा तक़वियत का बाइस हुआ। उसने पिटारी उठाई और बूढ़ी काकी की कोठरी की तरफ़ चली।

बूढ़ी काकी को महज़ इतना याद था कि किसी ने मेरे शाने पकड़े, फिर उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहाड़ पर उड़ाए लिए जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरों से टकराए। तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटक दिया। वो बेहोश हो गईं।

जब उनके होश बजा हुए तो किसी की ज़रा भी आहट न मिलती थी। समझ गईं कि सब लोग खा पी कर सो गए और उनके साथ मेरी तक़दीर भी सो गई। रात कैसे कटेगी। राम क्या खाऊं? पेट में आग जल रही है। या किसी ने मेरी सुद्ध ना ली। क्या मेरा पेट काटने से धन हो जाएगा? उन लोगों को इतनी दया भी नहीं इत्ती कि बुढ़िया न जाने कब मर जाये। उसका रोंयाँ क्यों दिखाएंगे। मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ। इस पर ये हाल, मैं अंधी अपाहिज ठहरी। न कुछ सूझे न बूझे। अगर आँगन में चली गई तो क्या बुध राम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं फिर आना, मुझे घसीटा पटका। उन्हीं पूरियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियां दीं। उन्ही पूरियों के लिए और इतनी दुर्गत करके भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया मेरी बात न पूछी। जब तब ही न दिया तो अब क्या देगी। ये सोच कर मायूसाना सब्र के साथ लेट गईं। रिक़्क़त से गला भर भर आता था। लेकिन मेहमानों के सामने लिहाज़ से रोती न थी।

यकायक उनके कान में आवाज़ आई, काकी उठो मैं पूरी लाई हूँ।

काकी ने लाडली की आवाज़ पहचानी। चट-पट उठ बैठीं। दोनों हाथों से लाडली को टटोला और उसे गोद में बिठा लिया। लाडली ने पूरियां निकाल कर दीं। काकी ने पूछा,

क्या तुम्हारी अम्मां ने दी हैं।

लाडली ने फ़ख़्र से कहा, नहीं ये मेरे हिस्से की हैं।

काकी पूरियों पर टूट पड़ीं। पाँच मिनट में पिटारी ख़ाली हो गई। लाडली ने पूछा, काकी पेट भर गया?

जैसे थोड़ी सी बारिश ठंडक की जगह और भी हब्स पैदा कर देती है। उसी तरह उन चंद पूरियों ने काकी की इश्तिहा और रग़बत को और भी तेज़ कर दिया था। बोलीं, नहीं बेटी, जाके अम्मां से और मांग लाओ।

लाडली, अम्मां सोती हैं, जगाऊँगी तो अम्मां मारेंगी।

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उस में चंद रेज़े गिरे थे। उन्हें निकाल कर खा गईं, बार-बार होंट चाटती थीं। चटख़ारे भरती थीं। दिल मसोस रहा था कि और पूरियां कैसे पाऊं? सब्र का बांध जब टूट जाता है तो ख़्वाहिश का बहाव क़ाबू से बाहर हो जाता है। मस्तों को सुरूर की याद दिलाना उन्हें दीवाना बनाता है। काकी का बेताब दिल ख़्वाहिश के इस बहाव में बह गया। हलाल-हराम की तमीज़ न रही। वो कुछ देर तक इस ख़्वाहिश को रोकती हैं। यकायक लाडली से बोलीं, मेरा हाथ पकड़ कर वहां ले चलो जहां मेहमानों ने बैठ कर खाना खाया था।

लाडली उनका मंशा न समझ सकी। उसने काकी का हाथ पकड़ा और उन्हें लाकर झूटे पत्तलों के पास बिठा दिया और ग़रीब भूक की मारी फ़ातिरुल अक़्ल बुढ़िया पत्तलों से पूरियों के टुकड़े चुन-चुन कर खाने लगी। वही कितना लज़ीज़ था। सालन कितना मज़ेदार, कचौरियां कितनी सलोनी, समोसे कितने ख़स्ता और नर्म?

काकी फ़ुतूरे अक़्ल के बावजूद जानती थी कि मैं वो कर रही हूँ जो मुझे न करना चाहिए। मैं दूसरों के झूटे पत्तल चाट रही हूँ, लेकिन बुढ़ापे की हिर्स मर्ज़ का आख़री दौर है। जब सारे हवास एक ही मर्कज़ पर आकर जमा हो जाते हैं बूढ़ी काकी में ये मर्कज़ उनका हुस्न-ए-ज़ायक़ा था।

ऐन उसी वक़्त रूपा की आँख खुली। उसे मालूम हुआ कि लाडली मेरे पास नहीं है। चूंकि चारपाई के इधर उधर ताकने लगी कि कहीं लड़की नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहां न पाकर वो उठ बैठी। तो क्या देखती है कि लाडली छोटे पत्तलों के पास चुप-चाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूरियों के टुकड़े उठा उठा कर खा रही हैं। रूपा का कलेजा सन्न से हो गया। किसी गाय के गर्दन पर छुरी चलते देखकर उसके दिल की जो हालत होती वही उस वक़्त हुई। एक ब्रहमनी दूसरों का झूटा पत्तल टटोले इससे इबरतनाक नज़ारा नामुम्किन था। पूरियों के चंद लुक़्मों के लिए उसकी चचेरी सास ऐसा रक़ीक़ और हक़ीर फ़ेअल कर रही है। ये वो नज़ारा था जिससे देखने वालों के दिल काँप उठते हैं। ऐसा मालूम होता है कि ज़मीन रुक गई है। आसमान चक्कर खा रहा है। दुनिया पर कोई आफ़त आने वाली है। रूपा को ग़ुस्सा न आया। इबरत के सामने ग़ुस्से का ज़िक्र क्या? दर्द और ख़ौफ़ से उसकी आँखें भर आईं। इस धर्म और पाप का इल्ज़ाम किस पर है? उसने सद्क़-ए-दिल से आसमान की तरफ़ हाथ उठाकर कहा, परमात्मा बच्चों पर रहम करना। इस अधर्म की सज़ा मुझे मत देना, हमारा सत्यानास हो जाएगा।

रूपा को अपनी ख़ुदग़रज़ी और बे इंसाफ़ी आज तक कभी इतनी सफ़ाई से नज़र न आई थी, हाय मैं कितनी बेरहम हूँ। जिसकी जायदाद से मुझे दो सौ रुपये साल की आमदनी हो रही है उसकी ये दुर्गत और मेरे कारन। ऐ ईश्वर मुझसे बड़ा भारी गुनाह हुआ है मुझे माफ़ करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों आदमियों ने खाना खाया में उनके इशारे की ग़ुलाम बनी हुई थी। अपने नाम के लिए। अपनी बड़ाई के लिए सैकड़ों रुपये ख़र्च कर दिए। लेकिन जिसकी बदौलत हज़ारों रुपये खाए उसे इस तक़रीब के दिन भी पेट भर कर खाना न दे सकी। महज़ इसलिए न कि वो बुढ़िया है, बेकस है, बेज़बान है।

उसने चराग़ जलाया। अपने भंडारे का दरवाज़ा खोला और एक थाली में खाने की सब चीज़ें सजा कर लिए हुए बूढ़ी काकी की तरफ़ चली।

आधी रात हो चुकी था। आसमान पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए फ़रिश्ते बहिश्ती नेअमतें सजा रहे थे। लेकिन उनमें किसी को वो मसर्रत न हासिल हो सकती थी जो बूढ़ी काकी को अपने सामने थाल देख कर हुई। रूपा ने रिक़्क़त आमेज़ लहजे में कहा:

काकी उट्ठो खाना ख़ालो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई। इसका बुरा न मानना, परमात्मा से दुआ करो कि वो मेरी ख़ता-मुआफ़ कर दे।

भोले-भाले बच्चे की तरह जो मिठाईयां पाकर मार और घुड़कियां सब भूल जाता है। बूढ़ी काकी बैठी हुई खाना खा रही थीं उनके एक एक रोएँ से सच्ची दुआएं निकल रही थीं और रूपा बैठी ये रुहानी नज़ारा देख रही थी।

xxxxxxxxxxxxxx